"जल संसाधन के क्षेत्र में भावी चुनौतियाँ"
विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
16-17 दिसम्बर, 2003, रुड़की (उत्तरांचल)

जल प्रबंध एवं अन्य आधुनिक तकनीकों द्वारा उत्पादकता वृद्धि व निर्धनता-उन्मूलन का एक समेकित प्रयास

आशुतोष उपाध्याय अतुल कुमार सिंह प्रताप राय भटनागर आलोक कुमार सिक्का
पूर्वी क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का अनुसंधान परिसर, पटना

सारांश

भूमि एवं जल सीमित संसाधन हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण इन संसाधनों पर निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या के पोषण हेतु यह आवश्यक है कि हम उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग करें। आदानों की उचित मात्रा व गुणवत्ता का सही समय पर उपयोग करना कृषि उत्पादन में वृद्धि करता है। जल विकास, जल निकास व सही समय पर जल उपयोग की कृषि उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्षा जल, भू-जल व सतही जल के उचित प्रबंधन द्वारा जल की बर्बादी को रोका जा सकता है और कम जल का उपयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी आधुनिक तकनीकें हैं, जिनको अपनाने से उत्पादकता में वृद्धि सम्भव है। कृषकों के जीवन-स्तर को सुधारने के लिए स्वयं सहायता समूह का गठन, वित्तीय संस्थानों से सम्पर्क व उनकी क्षमता का विकास करना भी अत्यंत आवश्यक है। इस पत्र में संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा (डीफिड) परियोजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादकता बढ़ाने व कृषकों के जीवन स्तर को सुधारने में किए गए प्रयासों की चर्चा की गई है।

1. परिचय :

किसी परियोजना-क्षेत्र में संसाधन प्रबंधन की कोई योजना अथवा नीतियाँ बनाने के क्रम में एक समेकित प्रयास से यहाँ अभिप्राय किसानों और साथ ही भूमिहीन गरीबों की जीविका को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक सभी कारकों को सम्मिलित करना है। परियोजना का क्षेत्र चाहे एक जलसमेट हो, या वह कोई नहर-प्रक्षेत्र हो, जब मुख्य उद्देश्य गरीबी-उन्मूलन हो, तो प्रयास में अधिक अंतर नहीं होता। इस शोध पत्र में, चयनित क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास हेतु भूमि, जल, फसल, पर्यावरण एवं मानव संसाधनों के प्रबंधन से सम्बन्धित तकनीकों के स्थानान्तरण हेतु अपनायी गयी पद्धति प्रस्तुत है।

2. बाधाओं की पहचान :

किसी क्षेत्र-विशेष में कोई गतिविधि शुरू करने से पूर्व, उस क्षेत्र की बाधाओं और समस्याओं की पहचान आवश्यक है। इस कार्य में किसानों के साथ पारस्परिक वार्तालाप एवं विचार विनिमय सहायक होते हैं। तत्पश्चात अध्ययनरत सम्बद्ध शोधकर्ता या संचार एवं विस्तार-कार्यकर्ता द्वारा निवारण योग्य तथा अनिवार्य बाधाओं को पृथक कर लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, बिहार के किसानों द्वारा बताई जाने वाली समस्यायें जैसे- जर्जर सड़कें, खराब संचार-व्यवस्था, अपर्याप्त बिजली-आपूर्ति और असुरक्षा आदि शोधार्थियों के लिए निवारण-योग्य नहीं हैं परन्तु राजनीतिज्ञों और राज्य के नीति-निर्माताओं के लिए निवारण-योग्य हैं। क्षेत्र-विशेष में रूकावटों और समस्याओं की पहचान के बाद, उपयुक्त तकनीकें उपलब्ध करने के लिए ऐसी नीति बनाई जानी चाहिए जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य, आर्थिक रूप से लाभकारी, पर्यावरण की दृष्टि से हितकारी और अत्यंत उपयोगी हो।

3. प्रबंधन की नीतियाँ :

समयबद्धता, मात्रा और गुणवत्ता - ये तीन कारक कृषि-तंत्र से बेहतर उत्पादन के लिए उत्तरदाई हैं। अधिक कृषि-उत्पादन समयबद्ध ढंग से, उचित मात्रा में उत्तम साधनों के प्रयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।

4. समयबद्धता :

समयबद्धता का अर्थ है किसी भी कृषि-कार्य को उस कार्य-विशेष के सर्वथा उपयुक्त समय पर सम्पन्न किया जाना। उदाहरण के लिए, पूर्वी क्षेत्र में चावल की नर्सरी उगाने की अवधि 25 मई से 15 जून तक तथा पौधों के रोपण की अवधि 25 जून से 15 जुलाई तक बताई गई हैं। यदि उक्त कार्य अपने निर्धारित समय पर पूर्ण कर लिए जायें तो कृषक निम्नवर्णित लाभ पा सकते हैं।

4.1 समय पर नर्सरी गिराने रोपने से चावल के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है, क्योंकि हमारे अध्ययन से पता चला है कि रोपनी में मात्र एक सप्ताह के विलम्ब से, परिपक्व होने के लिए पर्याप्त समय के अभाव तथा अधिक कीट-आक्रमण के कारण चावल की उपज में औसतन 4 प्रतिशत की कमी आ जाती है।

4.2 चावल के साथ-साथ अन्य रबी फसलों के उत्पादन में भी महत्वपूर्ण वृद्धि होती है क्योंकि धान की समय पर बुआई से अक्टूबर माह के अन्त तक इसकी कटाई हो जाती है और नवम्बर माह के दूसरे पखवारे में कृषक खेतों में गेहूँ की बुआई कर सकते हैं। चूँकि गेहूँ की फसल तैयार होने में अधिक समय लेती है, अतः समय के इस प्रबंधन की परिणति गेहूँ की पैदावार की वृद्धि में सहायक होती है।

4.3 आदानों, जैसे बीज, उर्वरकों, जल एवं कीटनाशकों के समयोचित प्रयोग से बहुमूल्य संसाधनों का न केवल अपव्यय कम होता है बल्कि भूमि और फसल द्वारा इनके महत्तम उयोग से पैदावार में भी सुधार होता है।

5. मात्रा :

आदानों की सही मात्रा का प्रयोग, संतोषजनक पैदावार प्राप्त करने में सहायक होता है, साथ ही शुद्ध लाभ में भी वृद्धि करता है। सोन नहर-प्रणाली के अन्तर्गत पटना मुख्य नहर की एक वितरणी आर. पी. चैनल- V के प्रक्षेत्र में कृषकों द्वारा आदानों के प्रयोग में निम्नलिखित तथ्य ज्ञात हुए :

5.1 कृषक, गेहूँ-क्षेत्र में बोये जाने वाले बीजों की प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में बोयी जाने वाली मात्रा से अधिक मात्रा में धान के बिचड़े या बीज बोते हैं। यह कार्य न केवल फिजूलखर्ची वाला है, बल्कि इससे उपज भी घट जाती है क्योंकि पौधों को प्रकाश-संश्लेषण और वृद्धि के लिए कम जगह मिलती है।

5.2 कृषकों के अनुसार यूरिया का अधिक उपयोग करने से उपज में वृद्धि होती है, परन्तु अध्ययन से यह पता चला कि यूरिया के अधिक प्रयोग से फसल ज्यादा हरी दिखाई देती है और कीटों को आकर्षित करती है। इससे कीट-ग्रसन में वृद्धि होती है तथा इसका योगदान भूमिगत जल-प्रदूषण में भी होता है। अतः मिट्टी और फसल की पोषण-स्थिति जानने के बाद उर्वरकों की संतुलित मात्रा में प्रयोग ही श्रेयस्कर होता है।

5.3 किसानों द्वारा अत्यधिक जलापूर्ति करने या अत्यधिक सिंचाई से क्षेत्र में जलजमाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है, जबकि कम जलापूर्ति के कारण फसल सूख जाती है। अतः जल की आपूर्ति, फसल के विकास के विभिन्न संवेदनशील चरणों में आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए।

5.4 कुछ किसानों द्वारा फसल में अत्यधिक कीटनाशकों का प्रयोग अपव्यय साबित हुआ, इससे उपभोक्ताओं को भी कई बीमारियाँ हुई। अतः जब अनिवार्य हो तभी उपयुक्त कीटनाशकों की केवल निर्धारित मात्रा डालनी चाहिए अन्यथा रोग-नियंत्रण की स्वदेशी तकनीक एवं अन्य स्थानीय विधियाँ अपनाई जानी चाहिए।

6. गुणवत्ता :

तीसरा कारक आदानों की गुणवत्ता है, जो उत्पादन की बढ़ोतरी में एक अहम भूमिका अदा करता है। यदि बीज, उर्वरक, जल, कीटनाशक और अन्य साधन उत्तम हैं ये निश्चित रूप से अच्छे उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करने में सहायक होते हैं। परिणामतः अच्छी कीमतें और ज्यादा लाभ प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए बीजों का उपचार, फसल-विंकास की प्रारंभिक अवस्था में कीट-को न्यून करने एवं उसके द्वारा उत्पादन की गुणवत्ता बनाये रखने के महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। बिहार में आदानों में मिलावट की समस्या बड़ी विकट है। इस समस्या के हल के लिए परियोजना-क्षेत्र में कुछ युवकों का चयन कर और उनका सीधा सम्पर्क बीज उर्वरकों और अन्य आदानों से जोड़कर किया गया। ये युवक ग्रमीणों से आदानों की सूची लेकर उन्हें बिना मिलावट के शुद्ध आदान न्यूनतम लाभ पर आपूर्ति करते हैं।

7. जल संसाधनों का प्रबन्धन :

कृषि फसलों की वृद्धि हेतु सही समय पर उचित मात्रा में उत्तम बीज, उर्वरक और कीटनाशक के प्रयोग के साथ ही जल की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विस्तृत रूप से कहा जाए तो जल भूमि पर केवल वर्षा से आता है परन्तु उपभोक्ताओं को यह तीन रूपों में उपलब्ध होता है — वर्षा, सतही और भूमिगत जल संसाधन। अतः वर्षा, सतही और भूमिगत जल संसाधनों के प्रबंधन हेतु नीतियाँ बनाई जानी चाहिए।

7.1 वर्षा जल :

वर्षा-जल के अधिकतम भण्डारण एवं सदुपयोग से सिंचाई का खर्च आश्चर्यजनक रूप से घटता है। किसानों के खेतों के चारों ओर लगभग 20-25 सेमी. के बंध बनाकर वर्षा जल का भण्डारण एवं प्रयोग करना एक सरल तकनीक है। इससे निम्नलिखित लाभ हैं :

(1) मानसून के दौरान वर्षा जल खेतों में जमा हो जाता है जो चावल की फसल द्वारा अधिक-से-अधिक उपयोग में लाया जाता है। इससे अन्य सिंचाई-स्त्रोतों पर खेतों में सिंचाई की आवश्यकता का दबाव कम हो जाता है।

(2) अपवाह को कम करके, यह मिट्टी और पोषक तत्वों को खेत में ही रोक कर रखता है। यह निकास नाली में मिट्टी के जमाव को रोकता जिससे उनके संस्तर में वृद्धि नहीं हो पाती, और उस क्षेत्र में अधिक पानी का फैलाव और बिखराव नहीं होता है।

(3) बंध, भू-पटल पर वर्षा जल के भण्डारण तथा भूगर्भ में भूमिगत जल के पुनः भरने में मदद करते हैं। इससे भूमिगत जल का स्तर बढ़ जाता है इसीलिए गैर मानसून समय में सिंचाई हेतु यह जल उपयोग में लाया जा सकता है।

कभी-कभी अत्यधिक वर्षा होती है, तब अतिरिक्त वर्षा जल, जो मूल क्षेत्र और भू-पटल पर जल-जमाव उत्पन्न कर देता है, उसका सुरक्षित प्रबन्धन अत्यावश्यक है। इस प्रकार की स्थिति में सही सीलाकृति (शेपिंग) एवं स्तरीकरण (ग्रेडिंग) द्वारा यदि पर्याप्त भूमि-ढलान बनाना आर्थिक रूप से सुलभ हो तथा यदि अतिरिक्त जल के निकास के लिए उचित निर्गम उपलब्ध हो, तो पृष्ठीय जलनिकास के लिए सोचा जा सकता है। दूसरी ओर यदि उचित निर्गम उपलब्ध न रहने के कारण भू-पटल से अतरिक्त जल को हटाना सम्भव न हो तो गड्ढों/निम्न-भूमि को गहरा और चौड़ा करके उसे एक तालाब या जल भंडारक संरचना का आकार दिया जा सकता है। इस तालाब का उपयोग कई उद्देश्यों की पूर्ति में भी किया जा सकता है, जैसे- अनावृष्टि के दौरान खरीफ और रबी फसलों की पूरक सिंचाई, मत्स्योत्पादन, घरेलू उद्देश्यों आदि।

8. सतही जल :

सतही जल प्रबन्धन में, हमें नहरों, तालाबों, टैंकों एवं अन्य स्त्रातों द्वारा सतह पर उपलब्ध जल के बारे में विचार करना चाहिए। आर.पी.चैनल- V प्रक्षेत्र के कृषकों द्वारा बताई गई मुख्य समस्या थी आवश्यकता के वक्त नहर-जल की अनुपलब्धता और जब आवश्यकता न हो तब जल का अत्यधिक बहाव।

इस कारण से कुछ प्रेक्षेत्र अत्यधिक सिचिंत हो गये, तो कुछ को उनकी आवश्यकता भर जल नहीं मिल पाया। संक्षेप में, जल की आपूर्ति/उपलब्धता और माँग/आवश्यकता के बीच एक बड़ा अन्तर था। नहर प्रक्षेत्र में वैज्ञानिकों ने स्थान-विशेष और समय-विशेष की फसलों की जल-आवश्यकंता का आंकलन कर आवश्यकतानुसार जल की आपूर्ति करने के लिए उन्हें जल संसाधन विभाग के सुपुर्द किया। इस प्रकार जल की उपलब्धता और आवश्यकता के बीच अन्तर काफी हद तक कम हो गया। नहर प्रक्षेत्र में वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा बहुत सारे प्रशिक्षण-शिविर आयोजित किए गए और किसानों को उपलब्ध जल के सदुपयोग हेतु शिक्षित किया गया। व्यवस्था को अपनाने, प्रबंधन और निर्वहन का मंत्र किसानों के बीच प्रसारित किया गया। वैज्ञानिकों ने नहर प्रक्षेत्र में कृषकों को जल उपभोक्ता संघ गठित करने के लिए भी उत्साहित किया तथा जल उपभोक्ता संघ और जल संसाधन विभाग (जल-आपूर्तिकर्ता) के बीच सम्पर्क स्थापित करने में सहायक का कार्य भी किया। कृषकों को दिए गए प्रशिक्षण और पारस्परिक विचार-विनिमय की सफलता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि उतनी ही जल की मात्रा में पहले कृषक केवल 800 एकड़ भूमि की सिंचाई कर पाते थे जबकि, अब वे 2400 एकड़ भूमि की सिंचाई कर पा रहे हैं। अर्थात् वितरणी के सही रख-रखाव एवं उचित देख-भाल से सिंचित क्षेत्र में तिगुनी वृद्धि हुई है।

9. भूमिगत जल :

भूमिगत जल, जलापूर्ति का एक निश्चित स्त्रोत है। यदि किसी के पास अपना ट्यूबवेल हो, तो वह फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई कर सकता है। जैसा कि पूर्व कथित है, कि बिचड़ा (नर्सरी) गिराने की सर्वोत्तम अवधि 25 मई से 15 जून के मध्य है, पर वर्षाजल उपलब्ध नहीं हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में ट्यूबवेल के जल का बेहतर सदुपयोग किया जा सकता है। चूँकि बिचड़ा 1/10 क्षेत्र में लगाई जाती है, अतः वे कृषक जिनके पास अपना ट्यूबवेल है, ट्यूबवेल -प्रक्षेत्र में समय से बिचड़ा गिरा सकते हैं। पम्प, चूषण-मोटर (मोटर-सक्शन) और आपूर्ति-पाइपों तथा अन्य सहायक यंत्रों के उचित रख-रखाव और देख-भाल से न केवल दक्षता बढ़ती है, बल्कि यंत्रों का जीवन-काल भी बढ़ता है। चूँकि नहर-जल से हमेशा पूरे क्षेत्र की सिंचाई करना सम्भव नहीं है, अतः परियोजना-क्षेत्र में भूमिगत जल के समुचित सदुपयोग तथा वर्षा जल के समेकित उपयोग के प्रयास किए जाने चाहिए। क्योंकि ये न केवल जल के एक ही स्त्रोत-विशेष पर भार कम करता है, बल्कि कम खर्च में दक्षतापूर्वक अधिक क्षेत्र की सिंचाई करता है।

10. सटीक कृषि-कार्यो का चयन :

कृषकों को, खेत-से-खेत के स्थान पर खेत-चैनलों के उपयोग से अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए प्रोत्साहित किया गया, क्योंकि खेत-से खेत सिंचाई करने पर नहर के ऊपरी प्रक्षेत्र के खेतों से काफी रिसाव होता है और पोषक तत्वों की बड़ी हानि होती है, साथ ही निचले प्रक्षेत्र में या तो जल जमाव हो जाता है, या जल का अभाव हो जाता है। जलापूर्ति के इस विधि के महत्व को किसानों ने समझा है और वे सिंचाई के लिए जलापूर्ति हेतु खेत-चैनलों के निर्माण का प्रयास कर रहें हैं। किसानों को अपने खेतों के आकार और प्रकार, खेत की ढाल, मिट्टी की किस्म और जल की उपलब्धता के अनुसार सिंचाई विधि का चयन करने के लिए भी शिक्षित किया गया।

11. बताई एवं अपनाई गई कुछ तकनीकें :

बड़ी संख्या में बताई गई एवं कृषकों द्वारा अपनाई गई कुछ अन्य तकनीकें हैं :-

(1) गेहूँ बोते समय (स्टैब्लिशमेंट) शून्य-कर्षण, क्योंकि इससे प्रथम सिंचाई में, गेहूँ-रोपण की परम्परागत विधि की तुलना में 25 से 30% जल की बचत होती है। इससे समय, ऊर्जा और धन की भी बचत होती है।

(2) पानी की कमी वाले क्षेत्रों में उच्च बीज स्तर व क्यारी विधि, जो गेहूँ-रोपण की परम्परागत विधि के मुकाबले, पैदावार में केवल 10% गिरावट के साथ 65% 70% जल की बचत करती है।

(3) गेहूँ-कटाई के तुरंत बाद, प्रत्येक तीन वर्षो के अन्तराल पर खेतों में ट्रैक्टर में लगे तपेदार हल के द्वारा गहन कर्षण न केवल मिट्टी के नीचे बनी कठोर परत को तोड़ता है, बल्कि यह मिट्टी की संरचना, रिसाव-संबंधी विशेषताओं, मिट्टी के चूर्णीकरण, मिट्टी के तापमान में सुधार और खर-पतवार की वृद्धि में कमी भी लाता है।

(4) जल-ग्रहण वाले क्षेत्रों सिंचाई-सुविधाओं से सुसज्जित बोरो-चावल।

(5) बेहतर मूल्य प्राप्त करने के लिए नियंत्रित स्थिति में चावल और शाकीय फसलों की नर्सरी के त्वरित विकास हेतु पौली हाउस का प्रयोग तथा बाजार में उत्पाद की शीघ्र उपलब्धि।

(6) बाजार में माँग और संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार रबी के मौसम में फसल-विविधता।

(7) प्रक्षेत्र (कमाण्ड एरिया) में सब्जियों तथा पपीता-जैसी उद्यान फसलों की उन्नत बुआई।

12. क्षमता निर्माण :

जल-प्रबंधन परियोजनाओं की विफलता अथवा आंशिक सफलता का मुख्य कारण यह है कि कई जलसमेट-प्रबंधन योजनाओं/प्रस्तावों में अधिकांश समय मानव संसाधन विकास या क्षमता-निर्माण वाला भाग अनुपस्थित रहता है। चूँकि क्षमता निर्माण के बिना किसी भी क्षेत्र के विकास की योजना अधूरी है, अतः युनाइटेड किंगडम द्वारा वित्तपोषित डी.एफ.आई.डी. (डिफिड) परियोजना पर कार्यरत, पूर्वी क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का अनुसंधान परिसर पटना के वैज्ञानिकों की एक टीम ने इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक बताया। वैज्ञानिकों ने कृषकों को कोई वित्तीय सहायता उपलब्ध नहीं करायी, क्योंकि यह दीर्घकाल तक चलने योग्य प्रयास नहीं है और यह उन्हें, परियोजना चलाने वाले प्राधिकरण पर आर्थिक रूप से आश्रित बना देता है। वैज्ञानिकों ने निम्नांकित नीतियों का प्रयोग कर किसानों और भूमिहीन गरीबों के जीवन स्तर में सुधार हेतु उनकी मदद की तथा उनको मार्गदर्शन/प्रशिक्षण दिया :

(1) बचत और जमा की समझदारी विकसित करने के लिए स्वयं सहायता समूहों का निर्माण।

(2) परियोजना-क्षेत्र में युवा और कर्मठ बेरोजगार निर्धनों का चयन कर उन्हें सम्बद्ध क्षेत्रों में प्रशिक्षण देने की सुविधा।

(3) क्रेडिट कार्ड सुविधा प्राप्त करने के लिए बैंकों और किसानों के बीच सम्पर्क स्थापित करना।

(4) दुग्ध-आपूर्ति हेतु किसानों/भूमिहीन गरीबों तथा पटना डेयरी के बीच सम्पर्क स्थापित करना।

(5) अपने प्रयोजनों, जैसे (i) मछलीपालन, (ii) बकरीपालन, (iii) कुक्कुटपालन, (iv) पापड़ बनाना, (v) निर्माण और पैकिंग आदि पर आधारित स्वयं सहायता समूहों का गठन।

13. निष्कर्ष :

इस प्रकार हम पाते हैं, कि परियोजना-क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास हेतु निर्धनता -उन्मूलन के लिए एक समेकित प्रयास, जो मिट्टी, पानी, फसल, पशुधन, पर्यावरण तथा परियोजना-क्षेत्र में रहने वाले किसानों और भूमिहीन गरीबों से संबद्ध समस्याओं और बाधाओं को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है, को अपनाना अत्यावश्यक है। लगातार वार्ता और परस्पर विचार-विनिमय द्वारा किसानों की समस्याओं को समझना, आत्म-विश्वास तथा सहभागिता और सहयोग की भावना का विकास करना, किसानों और अन्य सहायक/प्रशिक्षण संस्थाओं के बीच सम्पर्क स्थापित करना, वर्षा, सतही और भूतिगत जल संसाधनों के समुचित सदुपयोग एवं प्रबंधन के लिए प्रशिक्षण, कृषि-विधियों तथा आय में वृद्धि हेतु यथायोग्य तकनीकों एवं कृषि-विधियों का स्थानान्तरण, जीवन वृत्त में सुधार हेतु गतिविधि-आधारित स्वयंसेवी समूहों के गठन द्वारा क्षमता-निर्माण कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिन पर नियोजन किसी जलसमेट प्रबन्धन या विकास परियोजना पर कार्य करने के दौरान विचार करना आवश्यक है।